पाठ्य-सामग्री

एम.ए. (हिंदी) प्रथम वर्ष

हिंदी साहित्य का इतिहास, (पत्र-1)

‘आदिकाल का नामकरण’

प्रो. भूपेंद्र कलसी

समन्वयक

भारतीय भाषा विभाग

नालंदा खुला विश्वविद्यालय, नालंदा

आदिकाल का नामकरण

काल विभाजन के बाद, अध्ययन की सुविधा के लिए प्रत्येक काल को कोई-न-कोई नाम देना आवश्यक है। जिससे साहित्येतिहास में एक व्यवस्था आती है। इसलिए साहित्येतिहास को कई कालों में विभक्त कर उसका नामकरण किया जाता है। विभिन्न विद्वानों ने हिंदी साहित्येतिहास के प्रारंभिक काल को अलग-अलग नामों से अभिहित किया है—'चारणकाल' (ग्रियर्सन), 'प्रारंभिक काल' (मिश्रबंधु), 'बीजवपन काल' (महावीरप्रसाद द्विवेदी), 'वीरगाथा काल' और 'आदिकाल' (आचार्य रामचंद्र शुक्ल), 'सिद्ध-सामंत-काल' (राहुल सांकृत्यायन), 'आदिकाल' (हजारीप्रसाद द्विवेदी), 'संधिकाल' एवं 'चारणकाल' (रामकुमार वर्मा) 'वीर काल' (विश्वनाथ प्रसाद मिश्र) 'अंधकार काल' (कमल कुलश्रेष्ठ)।

काल-विभाजन के समान 'नामकरण' का प्रथम श्रेय भी ग्रियर्सन को है। उन्होंने आदिकाल को "The Bardio Period (चारण काल)" नाम दिया। इसका समय "700-1300 A.D. (700-1300 ई.)" माना। लेकिन, ग्रियर्सन ने इस समय अंतराल के किसी भी चारण कवि या रचना का उल्लेख अपने ग्रंथ में नहीं किया। इसलिए ग्रियर्सन द्वारा किया गया नामकरण उपर्युक्त नहीं है। आगे के इतिहासकारों ने भी यह नाम स्वीकार नहीं किया।

मिश्रबंधुओं ने 'आदिकाल' को 'आरंभिक काल' कहा। वे इस काल को दो वर्गों में विभक्त करते हुए, पहले भाग का नाम "पूर्वारंभिक काल (700-1343 संवत्)" और दूसरे भाग का नाम "उत्तरारंभिक काल (1344-1444 संवत्)" से अभिहित करते हैं। मिश्रबंधुओं पूर्वारंभिक काल का संबंध अपभ्रंश से जोड़ते हैं। लेकिन, उत्तरारंभिक काल में आदिकाल

की कोई प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती है। बल्कि उस समय तक भक्तिकालीन प्रवृत्तियाँ शुरू हो जाती हैं। अत: यह भी असंगत है।

रामचंद्र शुक्ल ने इस काल को "वीरगाथा काल" कहा। वह इस नाम को संबोधित करते हुए लिखते हैं—"आदिकाल की इस दीर्घ परंपरा के बीच डेढ़ सौ वर्ष के भीतर तो रचना की किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता है—धर्म, नीति, शृंगार, वीर सब प्रकार की रचनाएँ दोहों में मिलती हैं। इस अनिर्दिष्ट लोकप्रवृत्ति के उपरांत जब मुसलमानों की चढ़ाइयों का प्रारंभ होता है तब से हम हिंदी साहित्य की प्रवृत्ति एक विशेष रूप में बंधती हुई पाते हैं। राजाश्रित कवि और चारण जिस प्रकार नीति, शृंगार आदि के फुटकल दोहे राजसभाओं में सुनाया करते थे, उसी प्रकार अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन भी किया करते थे। यही प्रबंध परंपरा 'रासो' के नाम से पाई जाती है, जिसे लक्ष्य करके इस काल को हमने, 'वीरगाथाकाल' कहा है।" आचार्य शुक्ल जिन बारह पुस्तकों के आधार पर आदिकाल का नामकरण किया, वे इस प्रकार हैं—

"साहित्यिक पुस्तकें केवल चार हैं—1.विजयपाल रासो 2.हम्मीर रासो 3.कीर्तिलता 4.कीर्तिपताका। देशभाषा काव्य की आठ पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—5.खुमान रासो 6.बीसलदेव रासो 7.पृथ्वीराज रासो 8.जयचंद प्रकाश 9.जयमयंक जस चंद्रिका 10.परमाल रासो (आल्हा का मूल रूप) 11.खुसरो की पहेलियाँ आदि 12.विद्यापति पदावली। इन्हीं बारह पुस्तकों की दृष्टि से 'आदिकाल' का लक्षणनिरूपण और नामकरण हो सकता है। इनमें से अंतिम दो तथा बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रंथ वीरगाथात्मक ही हैं। अत: आदिकाल का नाम 'वीरगाथा काल' ही रखा जा सकता है।"

आगे चलकर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इन्हीं बारह रचनाओं का हवाला देते हुए लिखते हैं—"इधर हाल की खोजों से पता चलता है कि जिन बारह पुस्तकों के आधार

पर शुक्लजी ने इस काल की प्रवृत्तियों का विवेचन किया था, उनमें से कई पीछे की रचनाएँ हैं और कई नोटिस-मात्र हैं और कई के संबंध में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उनका मूलरूप क्या था।" द्विवेदी जी ने नए शोध के आधार पर बताया कि अमीर खुसरो की रचनाएँ वीरगाथात्मक नहीं हैं। विद्यापति की पदावली शृंगारिक रचनाएँ हैं। उसी तरह कीर्तिलता, कीर्तिपताका, विजयपाल रासो, हम्मीर रासो—ये सभी अपभ्रंश की रचनाएँ हैं। पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर संदेह है। वह अर्द्धप्रामाणिक रचना है। जयचंदप्रकाश और जयमयंक जसचंद्रिका—ये दोनों रचनाएँ नोटिस मात्र हैं। बीसलदेव रासो वीर रस की रचना नहीं है। बीसलदेव रासो और खुमान रासो 16वीं शताब्दी की रचना है। ये दोनों रचनाएँ उस काल के भीतर नहीं आती है। परमाल रासो उपलब्ध नहीं है। जो रचना उपलब्ध नहीं है, उसे किस आधार पर इस काल की रचना माना जाए। इसलिए शुक्ल जी द्वारा दिया गया 'वीरगाथाकाल' नाम भी उचित नहीं है।

राहुल सांकृत्यायन ने इस काल को "सिद्धसामंत-युग" कहा। इसकी समय-सीमा 760-1300 ई. तक माना। उनकी मान्यता है—यह नाम केवल दो वर्गों की ओर संकेत करता है—'सिद्ध' और 'सामंत'। सिद्ध रचनाकार थे। सामंत रचना प्रेरक। राहुलजी का यह नाम भी तर्क संगत नहीं है; क्योंकि इस काल में सिद्धों के अतिरिक्त नाथपंथियों, हठयोगियों और खुसरो आदि की रचनाएँ भी मिलती हैं। जिसे नजरंदाज किया गया। यह नाम भी मान्य नहीं हो सकता।

बाद में, रामकुमार वर्मा ने इस काल को 'संधिकाल' और 'चारण काल' नाम दिया। उन्होंने इस पूरे कालखंड को दो वर्गों में विभक्त किया—संधिकाल (700-1000 संवत्) और चारण काल (1000-1375 संवत्)। संधिकाल नाम भाषा के आधार पर किया गया। इस समय तक अपभ्रंश भाषा अपनी अंतिम सीमा पर थी। और हिंदी की बोलियाँ प्रारंभ हो रही थी। अत: वर्मा जी पहले भाग का नाम संधिकाल देते हैं। और दूसरे भाग का

नाम चारण काल। लेकिन, वह भी किसी चारण कवि या उनकी रचना का उल्लेख नहीं करते हैं। यह नामकरण भी भाषा और जाति विशेष के आधार पर किया गया। यह नाम भी किसी साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर नहीं किया गया। परवर्ती इतिहासकारों ने यह नाम भी स्वीकार नहीं किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस काल को 'बीजवपन काल' कहा है। यह नाम कुछ हद तक सार्थक प्रतीत होता है। इस नाम का अभिप्राय है—'उस समय हिंदी का अंकुरण हो रहा था। लेकिन, बीजवपन नाम से उस समय की हिंदी के प्रौढ़ होने का पता नहीं चलता। साहित्य के प्रारंभिक रूप का पता चलता है।' इसके विपरीत, इस कालखंड में रचे गए साहित्य की विशाल परंपरा हमारे सामने है। साहित्य, भाव और विषय की दृष्टि से; यह काल महत्त्वपूर्ण है। अत: यह नाम भी असंगत जान पड़ता है।

जिस प्रकार आचार्य शुक्ल ने इस काल को 'वीरगाथा काल' नाम दिया। उस नाम में थोड़ा हेर-फेर करते हुए विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'वीर काल' नाम दिया। यह कोई नया नाम नहीं है। आचार्य शुक्ल के नाम के तर्ज पर किया गया है।

आगे चलकर हजारीप्रसाद द्विवेदी इस काल को 'आदिकाल' नाम देते हैं। लेकिन उनका मानना है कि यह नाम भी अपने आप में पूर्ण नहीं है। लेकिन जब तक कोई और सार्थक नाम नहीं दिया जाता, तब तक इस काल को आदिकाल ही माना जाए। हजारीप्रसाद द्विवेदी का मानना हैं कि "इस नाम से एक भ्रामक धारणा की सृष्टि होती है।" स्वयं द्विवेदी जी द्वारा किया गया नामकरण में भी, अर्द्ध स्वीकृति झलकती है। लेकिन, परवर्ती इतिहासकारों में—नगेंद्र (सं.), गणपतिचंद्र गुप्त, बच्चन सिंह और रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'आदिकाल' नाम ही स्वीकार किया है।

***